e-ISSN:2582-7219

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH IN SCIENCE, ENGINEERING AND TECHNOLOGY

Volume 6, Issue 2, February 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.54

International Journal Of Multidisciplinary Research In Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

महाकाव्य किरातार्जुनीयम् की सूक्तियों में जीवन दर्शन

DR. SHAILJA RANI AGNIHOTRI

ASSOCIATE PROFESSOR, SANSKRIT, S.D. GOVT. COLLEGE, BEAWAR, INDIA

सार

महाकविः भारविः शैवमतावलम्बी , प्राकाण्डपण्डितः, राजनीतिज्ञः, वीररसवर्णनकुशलः, अलङ्कृतशैल्याः प्रवर्तकः च आसीत् । भारविणा निजपरिवारस्य , निवासस्थानस्य, पितुः, पितामहस्य, गुरोर्वा विषये कोप्युल्लेखो न कृतः किरातार्जुनीये । दण्डिविरचितम् अवन्तीसुन्दरीकथा अनुसारेण कुशिकगोत्रीयाः ब्राह्मणाः आनदपुरे निवसन्ति स्म । ततः परं ते वरारप्रान्ते अचलपुरे एलिचपुरे वा आगत्य निवासम् अकुर्वन् । अस्मिन्नेव वंशे नारायणस्वामी जातः । तस्य पुत्रः एव दामोदरः आसीत् । अयमेव दामोदरः भारविः इति नाम्ना प्रख्यातः अभवत् । तत्र भारविविषयकः श्लोकः अयं प्राप्यते -

स मेधावी कविर्विद्वान् भारविं प्रभवां गिराम् ।
अनुरुध्याकरोन्मैत्रीं नरेन्द्रे विष्णुवर्धने ॥

इत्थं भारविः दण्डिनः प्रपितामहः आसीत् । तस्य स्थितिकालः ६०० ईसवीयसमीपे मन्यते । अस्य 'किरातार्जुनीयम्' नाम एकमेव महाकाव्यं प्राप्यते; यत् बृहत्त्रय्यां प्रथमस्थाने' परिगणितम् । संस्कृतविद्वत्समाजे 'भारवेरर्थगौरवम्', 'नारिकेलफलसम्मितं वचो' 'स्पुटता न पदैरपाकृता' इत्याभणकानि सुप्रसिध्दानि एव । महाकविभारविकृते किरातार्जुनीयमहाकाव्ये तज्जीवनविषयकसाक्ष्याभावात् बाह्यसाक्ष्यानुसारं तस्य कालनिर्धारणं करणीयम् ।

परिचय

1. दक्षिणभारते एहोलग्रामे ६३४ ख्रिष्टीया जैनकविना रविकीर्तिना लिखितशिलालेखे " स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः" इत्यनेन ज्ञायते यत् सप्तम शताब्दयाः पूर्वार्ध्दं यावत् भारविः सुविख्यातः कविरासीत् ।
2. काव्यकलायाः उत्तरोत्तरप्रभावदृष्ट्या कालिदासः भारवेः पूर्ववर्ती महाकविमाघश्च उत्तरवर्ती कविरासीत् । माघस्य स्थितिकालः ७०० ख्रिष्टीयाब्दः मन्यते, अतः भारवेः स्थितिकालः षष्ठशताब्धाः उत्तरार्ध्दे भवैतुमर्हति ।
3. काशिकायां भारवेः (किरात ३/१४) इत्युध्दरणं प्राप्यते । अतः भारवेः कालः वामनजयादित्याभ्यां (सप्तमशताब्दी –पूर्व) षष्ठशताब्धाः उत्तरार्ध्दे भवेत् ।
4. अवन्तीसुन्दरीकथा – अनुसारं दण्डिनः प्रपितामहः दामोदरः एव 'भारविः' यः विष्णुवर्ध्दनस्य (६१५ ई.) समापण्डितो आसीत् । अतः तस्य कालः षष्ठशताब्द्याः उत्तरार्ध्दे भवितुमर्हति । निष्कर्षरुपेण एवं प्रतिभाति यत् भारवेः स्थितिकालः षष्ठशताब्द्याः उत्तरार्ध्दे सप्तमशताब्द्याः पूर्वार्ध्दे (५५०-६०० ई.) भवैतुम् अर्हति ।

महाकविभारविना महाभारतकथामाश्रित्य अलंकृतकलापक्षप्रधानशैल्या विरचितं अष्टादशसर्गात्मकं वीररसप्रधानम् अर्थगाम्भीर्ययुक्तं बृहत्त्रय्यां प्रथमपरिगणितं 'किरातार्जुनीयम्' नाम एकमेव महाकाव्यं समुपलभ्यते । अस्य ग्रन्थस्य शुभारम्भः 'श्री' शब्देन, सर्गान्तः 'लक्ष्मी – शब्देन च भवति । अत्र अर्जुनस्य किरातवेशधारिणा शङ्करेण सह युध्दं वर्णितम् । अत एव ग्रन्थस्य नामकरणं कृतं – 'किरातार्जुनीयम्' किराताश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ (द्वन्द्वः) किरातार्जुनौ अधिकृत्य कृतं काव्यं किरातार्जुनीयम् । किरातार्जुन + छ ('ईय' आदेशः) अर्जुनाय दिव्यास्त्राणां प्राप्तिरेव महाकाव्यस्य फलम् । अतः ग्रन्थस्यास्य नायकः अर्जुनः नायिका च द्रौपदी वर्तते । अर्थगौरवं, स्पष्टता, पुनरुक्तेरभावः अलंकृतशब्दयोजनाश्च अस्य महाकाव्यस्य वैशिष्ट्यम् । भारविना एकाक्षरद्वयक्षर श्लोकाः अपि रचिताः । तद्यथा – " न नोनन्नुनो नाना नानानना ननु" किरात. १५/१४. ग्रन्थेऽस्मिन् ऋतुवर्णनं, हिमालयवर्णनं, सन्ध्यावर्णनं, चन्द्रवर्णनं, प्रभातमित्यादीनां रोचकं रमणीयञ्च चित्रणं विद्यते । एवमेव पञ्चदशे सर्गे चित्रकाव्यस्य वर्णनं दर्शनीयम् । प्रथमसर्गे द्रौपद्याः कथने या वचनचातुरी विद्यते, सा अन्यत्र दुर्लभा एव ।[1,2,3]

कविपरिचयः

किरातार्जुनीयं महाकविना भारविणा रचितमेकं महाकाव्यम् अस्ति। भारवेः एषा एका एव कृतिः उपलभ्यते। आवन्तिसुन्दरीकथानुसारेण महाकविः दण्डी भारवेः प्रपौत्रः आसीत्। एषः कौशिकगोत्रीयः आसीत्। अस्य पूर्वजाः गुर्जरप्रदेशस्य आनन्दपुरनगरे वसन्ति स्म। नारायणस्वामी तस्य पिता। भारवेः मूलनाम दामोदरः आसीत्। भारविः तस्य उपाधिः आसीत्।

कृतिपरिचयः

किरातार्जुनीयस्य कथानकस्य मूलाधारः महाभारतम् अस्ति। महाभारतस्य अष्टादशसर्गेषु वनपर्वणि किरातार्जुनीयस्य कथा अस्ति। अत्र किरातः तत्वेषधारी शिवः अस्ति। महाभारतात् संक्षिप्तकथानकं स्वीकृत्य भारविः स्वकल्पनाभिः काव्यप्रतिभयाच कथानके

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

मौलिकताम् उत्पादितवान्। महाभारतस्य शैली सरला अस्ति किन्तु किरातार्जुनीयस्य शैली क्लिष्टा अलङ्कृता च अस्ति। महाकाव्यलक्षणानुरोधेन भारविः स्थाने स्थाने ऋतु- पर्वत- नदी- वन- प्रातः-सन्ध्यादीनाम् अपि सुन्दरं वर्णनं कृतवान्। भारवेरर्थगौरवम् इत्युक्त्यनुसारम् किरातर्जुनीयस्य अर्थगौरवम् अतिव प्रसिद्धम् अस्ति। चित्रकाव्यस्य चमत्कारं प्रदर्शयन् भारविः एकव्यञ्जनस्य प्रयोगेण अपि श्लोकानां निर्माणं कृतवान्।
उदाहरणार्थं श्लोकमेकम् अत्र दत्तम्।
न नोन नुन्नो नुन्नानो नाना नानाननानन।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेना नानेना नुन्ननुन्ननुत्॥किरा॥

विचार-विमर्श
[अपने विपुल भाषिक एवं ऐतिहासिक महत्व के बावजूद यह ग्रंथ साधारण जन के लिए विलुप्तप्राय हो चुका है. विश्वविद्यालयों में लगे कुछ अंशों को छोड़कर सम्यक् टीका और अनुवाद के साथ पूरे ग्रंथ का मिलना तक दुस्तर है. इसकी अनूठी विशेषताओं के मूल्यांकन के साथ समग्र कृति का एक संक्षिप्त पाठ सँजो लेने का यह विनम्र प्रयास इसी परिप्रेक्ष्य में.] संस्कृत के छः प्रसिद्ध महाकाव्य हैं, जिन्हें एक परम्परा के तहत बृहत् और लघु दो श्रेणियों में रखा गया है– तीन बृहत्त्रयी और तीन लघुत्रयी. किरातार्जनुयीयम् (भारवि), शिशुपालवधम् (माघ) और नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)–बृहत्त्रयी. कुमारसंभवम्, रघुवंशम् और मेघदूतम्–तीनों कालिदास के—लघुत्रयी. [मेघदूतम् कलेवर में छोटा होने तथा महाकाव्य के काव्यशास्त्रीय गुणों– आचार्य दण्डी के 'काव्यादर्श' के अनुसार सर्ग-निबद्धता; 'ऐतिहासिक' या पौराणिक कथा; धर्म, अर्थ, काम मोक्ष के चारों पुरुषार्थों का विपाक; कुशल, उदात्त नायक; नगर, उपवन, समुद्र, पर्वत, ऋतुओं तथा जीवन के समग्र का वर्णन–से वंचित होने के बावजूद, इस वर्गीकरण में महाकाव्य कैसे मान लिया गया, स्पष्ट नहीं होता. प्रकृतितः तो यह खंडकाव्य है.][2,3,4]
भारवि अपने अर्थ-गौरव या गहन-गम्भीर भाव-सम्पदा के लिए जाने जाते हैं—'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्.' इस अर्थ-गौरव से मेल खाती एक विदग्ध भाषा और अभिव्यक्ति-कौशल भी उनके यहाँ मौजूद है. राजनीति और व्यवहार-नीति सहित जीवन के विविध आयामों में उनकी असाधारण पैठ है. आदर्श और व्यवहार के द्वंद्व तथा यथार्थ जीवन के अतिरेकों के समाहार से अर्जित संतुलन उनके लेखन को 'समस्तलोकरंजक' बनाता है. लेकिन भारवि मूलतः जीवन की विडंबनाओं और विसंगतियों के कवि हैं, उनका सामना करते हैं और उनके खुरदुरे यथार्थ के बीच संगति बिठाने का प्रयास करते हैं. किरातार्जुनीयम् के पहले सर्ग में द्रौपदी और दूसरे में भीम द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के लिए उकसाने और युधिष्ठिर द्वारा उसे अनीतिपूर्ण बताकर ख़ारिज कर देने के क्रम में भारवि ने राजनीति के दो छोरों के बीच के द्वंद्व पर बहुत सार्थक विमर्श प्रस्तुत किया है. इसी तरह ग्यारहवें सर्ग में मोक्ष के बजाए शक्ति और प्रभुता के लिए किए जा रहे अर्जुन के तप को इंद्र द्वारा गर्हित बताए जाने पर, अर्जुन के प्रत्युत्तर के रूप में भारवि ने जीवन-व्यवहार में अन्याय के प्रतिकार, लौकिक सफलता, यश और आत्म-सम्मान के महत्व पर जो गम्भीर विचार दिए हैं वे स्वस्थ इहलौकिक जीवन के एक संतुलित आदर्श का चित्र उपस्थित करते हैं. भारतीय 'शास्त्रों' में अंतर्भूत लोकोत्तर चेतना का यह एक उलट पाठ है.
भाषा पर अपने अप्रतिम अधिकार के चलते चित्रकाव्य के जिस भाषिक चमत्कार (किरातार्जुनीयम् के पंद्रहवें सर्ग में) की परम्परा भारवि ने शुरू की, उनके बाद के कवियों के लिए वह कसौटी बन गई और माघ (शिशुपालवधम्) में जाकर परवान चढ़ी. नीचे इस उप शीर्षक के अंतर्गत आप देखेंगे कि भाषा पर अप्रतिम अधिकार और भाव, शिल्प एवं कथ्य के बीच समुचित समन्वय के बिना ऐसा चमत्कार संभव नहीं था.
किरातार्जुनीयम् भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है, जिसने एक सांगोपांग महाकाव्य का मार्ग प्रशस्त किया. माघ-जैसे कवियों ने उसी का अनुगमन करते हुए संस्कृत साहित्य भंडार को इस विधा से समृद्ध किया और इसे नई ऊँचाई प्रदान की. कालिदास (पहली शताब्दी ई.पू.) की लघुत्रयी और अश्वघोष (पहली-दूसरी शताब्दी) के बुद्धचरितम् में महाकाव्य की जिस धारा का दर्शन होता है, अपने विशिष्ट गुणों के बावजूद उसमें वह विषदता और समग्रता नहीं है, जिसका सूत्रपात भारवि ने किया. संस्कृत काव्य को भारवि की यह महत्वपूर्ण देन है, जिसे अपूर्व मान्यता भी मिली. संस्कृत में किरातार्जुनीयम् की कम से कम 37 टीकाएँ हुई हैं, जिनमें मल्लिनाथ की टीका घंटापथ सर्वश्रेष्ठ है. [मल्लिनाथ ने यह संज्ञा इसलिए दी कि जब वन-प्रांतर में पशुओं के झुंड को चरने के लिए छोड़ते थे, उनमें से अग्रणी के गले में एक घंटा बाँध देते थे, जिसकी आवाज़ से झुंड की स्थिति मालूम होती रहती थी. यह महाकाव्य भी किसी घने जंगल से कम नहीं, जिसमें मल्लिनाथ की टीका के मार्ग-दर्शन के बिना कोई भी खो सकता है.] सन 1912 में कार्ल कैप्पलर ने हारवर्ड ओरियेंटल सीरीज के अंतर्गत किरातार्जुनीयम् का जर्मन अनुवाद किया. अंग्रेजी में भी इसके भिन्न-भिन्न भागों के कम से कम छः अनुवाद हो चुके हैं.
कालिदास की तरह ही भारवि भी अधिष्ठित परंपरा का पालन करते हुए अपने समय, स्थान और जीवन के बारे में कोई सुराग़ नहीं छोड़ते. विद्वानों में काफ़ी मतभेद के बाद मोटे तौर पर उनका समय छठी शताब्दी ईसवी मान लिया गया है. इस सम्बंध में बादामी के चालुक्य-नरेश पुलकेशिन द्वितीय के 634 ई. के ऐहोल शिलालेख, ई. 580 के आस-पास कोंकण में राज्य करनेवाले गंग नरेश दुर्विनीत के एक दानपत्र में उनके द्वारा किरातार्जुनीयम् के चित्रकाव्यवाले पंद्रहवें सर्ग की टीका लिखे जाने का संदर्भ, तथा दण्डी (सातवीं शताब्दी) की रचना अवंतिसुंदरीकथा में दामोदर (नाम) भारवि (सूर्य की आभा—उपाधि) का उनके पूर्वज (प्रपितामह) के रूप में उल्लेख, के आधार पर छठी शताब्दी का यह समय निर्धारित हुआ है.

International Journal Of Multidisciplinary Research In Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

राजनीति और व्यवहार-नीति में भारवि के विशेष रुझान के चलते यह युक्तियुक्त ही था कि वे किरातार्जुनीयम् का कथानक महाभारत से उठाते. उन्होंने वनपर्व के पाँच अध्यायों से पांडवों के वनवास के समय अमोघ अस्त्र के लिए अर्जुन द्वारा की गई शिव की घोर तपस्या के फलस्वरूप पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के छोटे-से प्रसंग को उठाकर उसे अठारह सर्गों के महाकाव्य में फैला दिया है. पांडवों के वनवास-काल में गुप्तचर के रूप में हस्तिनापुर भेजे गए एक वनेचर (वनवासी) से सूचना मिलती है कि दुर्योधन अपने सम्मिलित राज्य के सर्वांगीण विकास और सुदृढ़ीकरण में दत्तचित्त है, क्योंकि कपट-द्यूत से हस्तगत किए गए आधे राज्य के लिए उसे पांडवों से आशंका है. पांडवों को भी लगता है कि वनवास की अवधि समाप्त होने पर उनका आधा राज्य बिना युद्ध के वापस नहीं मिलेगा. द्रौपदी और भीम युधिष्ठिर को वनवास की अवधि समाप्त होने की प्रतीक्षा न कर दुर्योधन पर तुरंत आक्रमण के लिए उकसाते हैं, लेकिन आदर्शवादी, क्षमाशील युधिष्ठिर व्यवहार की मर्यादा लाँघने को तैयार नहीं. उधर आ निकले व्यास सलाह देते हैं कि भविष्य के युद्ध के लिए पांडवों को अभी से शक्ति-संवर्धन करना चाहिए. उन्हीं के द्वारा बताए गए उपाय के अनुसार अर्जुन शस्त्रास्त्र के लिए इंद्र (उसके औरस पिता) को तप से प्रसन्न करने के लिए एक यक्ष के मार्ग-दर्शन में हिमालय-स्थित इंद्रकील पर्वत की ओर चल पड़ता है (हिम प्रदेश में स्थित इंद्रकील मिथकों में पृथ्वी पर इंद्र की एक ख़ूबसूरत जागीर-जैसा है). वहां एक आश्रम बनाकर की गई तपस्या के फलस्वरूप अप्सराओं वगैरह को भेजकर परीक्षा लेने के बाद इंद्र एक वृद्ध मुनि के वेष में उपस्थित होते हैं और तपस्या के नाशवान लौकिक लक्ष्य को नि:सार बताते हुए परमार्थ की महत्ता का निदर्शन करते हैं. अर्जुन इसकी काट में कौरवों द्वारा किए गए छल एवं अन्याय का लेखा-जोखा प्रस्तुतकर शत्रु से प्रतिशोध लेने की अनिवार्यता, सामाजिक कर्तव्य-पालन तथा अन्याय के प्रतिकार का तर्क देकर इंद्र को संतुष्ट कर देता है. फलस्वरूप इंद्र अपने असली रूप में प्रकट होकर अर्जुन को मनोरथ-पूर्ति के लिए शिव की तपस्या करने की सलाह देते हैं. अर्जुन फिर से घोर, निराहार तपस्या में लीन हो जाता है. अर्जुन इंद्रकील के लिए एक अजनबी तपस्वी है, जटा, वल्कल और मृगचर्म तो उसके पास हैं लेकिन साथ ही शरीर में कवच भी है, यज्ञोपवीत की जगह प्रत्यंचा-समेत गांडीव धनुष है, दो विशाल तरकस हैं और एक उत्तम खड्ग भी. उसे मुनिधर्म-विरोधी समझकर वहाँ के अन्य तपस्वी आतंकित हैं और शंकर के पास फ़र्याद लेकर पहुँच जाते हैं. फिर वही परीक्षा और उसके क्रम में शिव जी किरातों की स्थानीय जनजाति के सेनापति का वेश धारणकर किरातों के ही वेष में अपने गणों की सेना लेकर अर्जुन के पास पहुँच जाते हैं. तभी मूक नाम का एक दानव अर्जुन की तपस्या को देवताओं का कार्य समझकर, विशाल शूकर का शरीर धारणकर, उसको मारने के लिए झपटता है. शिव और अर्जुन दोनों द्वारा एक साथ चलाए गए एक-जैसे बाण से उसकी इहलीला समाप्त हो जाती है. शिव का बाण तो उसके शरीर को बेधता हुआ ज़मीन में धँस जाता है और अर्जुन जब अपना बाण उसके शरीर से निकालने जाता है तो शिव अपने एक गण को भेजकर विवाद खड़ा करा देते हैं. परिणाम है दोनों के बीच युद्ध. अर्जुन गणों की सेना को तो बाण-वर्षा से भागने को मज़बूर कर देता है पर शिव के साथ हुए युद्ध में परास्त हो जाता है. पराजय से हताश अर्जुन किरात-सेनापति के वेश में शिव को पहचानकर समर्पण कर देता है, जिससे प्रसन्न होकर शिव प्रकट होते हैं और पाशुपतास्त्र प्रदानकर उसका प्रशिक्षण देते हैं. इस तरह अर्जुन का मंतव्य पूरा होने के साथ महाकाव्य-विधा के भी सारे मंतव्य सिद्ध हो जाते हैं.

किरात वेशधारी शिव के इस लोकोत्तर मिथक से इतर इस प्रसंग की अपनी एक विशिष्ट जनजातीय अभिव्यंजना भी है, जो इस काव्य को वर्तमान भावबोध के करीब लाती है. यही नहीं, युधिष्ठिर और गुप्तचर बने वनेचर के बीच घटित संवाद में उसकी जो अटूट स्वामिभक्ति, अदम्य निर्भीकता और उच्च राजनीतिक समझ सामने आती है, वह वनवासियों के प्रति भारवि की पक्षभरता में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती. वनेचर शुरू में ही स्पष्ट कर देता है—

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वञ्चनीया: प्रभवोऽनुजीविभि:।
अतोऽर्हसि क्षंतुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वच:।।1:4।।
स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न य: संश्रृणुते स किंप्रभु:।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपद: ॥1:5॥

[किसी कार्य के लिए नियुक्त कर्मचारी द्वारा स्वामी को धोखा नहीं दिया जाना चाहिए. अस्तु, मैं प्रिय या अप्रिय आपको जो भी बताऊँ, उसके लिए क्षमा करेंगे. वस्तुत: ऐसी वाणी, जो हितकारी भी हो और मनोहर भी लगे, दुर्लभ है. {सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् का विपर्यय प्रस्तुत करता श्लोकांश 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वच:' संस्कृत की एक अति-लोकप्रिय कहावत बन गया है.} वह मंत्री कैसा जो उचित (किंतु अप्रिय लगनेवाली) सलाह न दे, और वह राजा कैसा जो हितकारी (किंतु कठोर) बात न सुन सके. राजा और मंत्री में परस्पर अनुकूलता (पूर्ण विश्वास) होने पर ही राज्य के प्रति सभी प्रकार की समृद्धियां अनुरक्त होती हैं.]

गुप्तचर से प्राप्त दुर्योधन के राज्य के सुदृढ़ीकरण की सूचना जब युधिष्ठिर द्रौपदी और अन्य पांडवों को देते हैं, कौरवों द्वारा सर्वाधिक प्रताड़ित द्रौपदी अपने को जज़्ब करने में असमर्थ हो जाती है और उसका क्रोध उबल पड़ता है. तभी खड़ा होता है मर्यादा एवं समरनीति, साधन और साध्य के बीच का वह द्वंद्व. द्रौपदी युधिष्ठिर को 13 वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बजाए, जिस दौरान दुर्योधन अपनी स्थिति पुख़्ता कर लेगा, तुरंत उस पर आक्रमण करने का आग्रह करती है और इसके लिए नारी-सुलभ कटूक्तियों तक का इस्तेमाल करती है–[3,4]

व्रजंति ते मूढधिप:है पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिन:।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषव:॥1:30॥

[जो लोग अपने मायावी शत्रु के साथ मायावी नहीं बनते वे मूर्ख हैं और सदैव पराजित होना ही उनकी नियति है, क्योंकि ऐसे निष्कपट, सीधे-सादे लोगों में दुष्ट वैसे ही घुस जाते हैं जैसे उघड़े हुए अंगों में तीक्ष्ण बाण.]

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

फिर—
अवंध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवंति वश्या: स्वमेव देहिन:।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातदार्हेन न विद्विषादर:॥1:33॥
[जिसका क्रोध कभी निष्फल नही जाता, स्वत: लोग उसके वश में हो जाते हैं, वही विपत्तियों को दूर करने में समर्थ होता है. क्रोध-विहीन व्यक्ति के प्रति प्रेम-भाव रखनेवाले भी उसका आदर नहीं करते, न उससे शत्रुता होने पर कोई डरता है.]
दूसरे सर्ग में भीम भी द्रौपदी का समर्थन करता है. उसके अनुसार द्रौपदी की बातें पराक्रम देनेवाली उस औषधि के समान हैं जो परिणाम में तो गुणकारी है, किंतु स्वल्प मात्रा में लेने पर भी क्षीण (पाचन) शक्तिवालों को भयंकर दु:ख देती है. वह युधिष्ठिर की तुलना उस हथिनी से करता है जो दलदल में फँसकर अपने ही ज्ञान और विद्वत्ता के भार से विनष्ट हो रही है.
व्यवहार के इस पक्ष को ख़ारिज करने के लिए युधिष्ठिर मूल्य, मर्यादा, नीति और संयम का जो प्रतिपक्ष खड़ा करते हैं, वह मुट्ठी में ली गई बालू-जैसा है. हाँ, शुरू का छंद ज़रूर इतना प्रसिद्ध हुआ कि वह पूरा का पूरा एक कहावत बन गया, जिसके इर्द-गिर्द भारवि के अज्ञात जीवन से जुड़ी कई झूठी-सच्ची किंवदंतियां उठ खड़ी हुईं—
सहसा विदधीत न क्रियामविवेक: परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धा: स्वयमेवसम्पद:॥1:30॥
[बिना सोचे-विचारे सहसा किसी काम को अंजाम नहीं देना चाहिए. अविवेक बड़ी विपत्तियों का घर है. सम्पत्तियाँ (सफलताएँ) तो गुणों पर लुब्ध होती हैं और विचारशील व्यक्ति का स्वयं ही वरण करती हैं.]
युधिष्ठिर का ज़ोर क्रोध का त्याग करने, इंद्रियों पर नियंत्रण रखने, सद्बुद्धि के साथ विचार करने और महापुरुषों द्वारा आचरित पथ का अनुसरण करने पर है. उनके प्रमेय का मुख्य आधार यह है कि इस अवधि में दुर्योधन अपने अभिमान के मद से अन्य राजाओं को अपमानितकर उन्हें विरक्त कर देगा और उसके मंत्री तथा अनुगामी द्वेष भाव से ग्रस्त होकर स्वत: उसे नष्ट कर देंगे. वे इस प्रमेय पर इधर-उधर भटक रहे थे कि तभी व्यास का आगमन होता है, जो उन्हें इस पेचीदा स्थिति से छुटकारा दिला देते हैं. तीसरे सर्ग में व्यास कौरव पक्ष के भीष्म, द्रोण, कर्ण-जैसे धुरंधरों को पांडवों द्वारा अजेय बताते हुए 13 साल की अवधि में हर तरह से शक्ति-संवर्धन करने और भविष्य के अवश्यंभावी युद्ध की तैयारी के लिए उसका उपयोग करने की सलाह देते हैं. एतदर्थ वे अर्जुन को उच्च कोटि के शस्त्रास्त्र हेतु तपस्या से इंद्र को प्रसन्न करने के लिए प्रेरित करते हैं और अपने साथ लाए एक यक्ष को भी छोड़ जाते हैं जो अर्जुन को इंद्र की तपस्या के लिए उपयुक्त स्थान तक ले जाएगा. इस तरह वे बीच का एक व्यवहार्य मार्ग सुझा जाते हैं. यह है भारवि का अतिरेकों का समाहार और द्वंद्वात्मक स्थितियों के बीच का संतुलन. ध्यातव्य है कि व्यास ने महाभारत में भी यही समाहार दिया था, लेकिन वहाँ द्रौपदी और भीम इतने आक्रामक रूप से वाचाल नहीं थे.
कथा का केंद्रीय ढाँचा तीसरे सर्ग के बाद दसवें सर्ग में फिर से शुरू होता है. लेकिन कृति को महाकाव्य का परिभाषित स्वरूप देने तथा विविधवर्णी, अलंकारिक एवं मनोहारी वर्णनों के लिए कुछ अवांतर प्रसंगों को लाकर इसमें चौथे से लेकर नवें तक के (कुल छ:) सर्गों का अतिरिक्त सन्निवेश कर दिया गया है.
चौथे सर्ग में यक्ष के मार्ग-दर्शन में अर्जुन की द्वैतवन से हिमालय तक की यात्रा का सजीव एवं रोचक वर्णन है, जिसमें शरद ऋतु की थिर और संयत प्रकृति और उसके साथ घुले-मिले जन-जीवन का उल्लास नाना रूपों में तरंगित है. यहाँ धान की गदराई बालों से भरे खेत हैं, कमल-पुष्पों और उछलती-कूदती मछलियों से भरे स्वच्छ तालाब हैं, जिनमें धान की फसलों की छाया पड़ रही है, जिनके पार्श्व में गाँव की बस्ती है, जिनके घरों के सामने खिले हुए पुष्पोंवाले लता-मंडप के नीचे ग्राम-वासी जुड़े वार्तालाप कर रहे हैं. वर्षा का आवेग छोड़कर, लहरदार रेतीले तटों के बीच शांत वेग से बहती नदियाँ हैं, अपने बछड़ों से मिलने को उत्कंठित लेकिन भरे थनों के कारण तेज चलने में असमर्थ गाएँ हैं, नृत्य की-सी देह-भंगिमा लिए, दूध बिलोती या मंथर गति से कहीं जाती, श्रम से झँपी आँखोंवाली गोप-बालाएँ हैं. श्वेत हंसों से कूजित और बादलों से साफ़ आसमान के नीचे इतनी शांति है कि लगता है जैसे निर्मल शारदीय दिशाएँ ही परस्पर बातें करने लगी हों. इस भू-भाग और उसमें रमे जन-जीवन को मूर्तिमान करनेवाले चौथे सर्ग के 38 श्लोक प्रकृति, पर्यावरण और श्रमशील ग्राम्य-जीवन के प्रति भारवि की ललक और बहुआयामी सौंदर्य को रूपायित करने की उनकी अमोघ क्षमता के दर्शन कराते हैं. परस्पर गुँथे दृश्य-विधान वाले कई-कई श्लोकों के गुच्छों में से किसी एक को चुनना कठिन है. लेकिन एक स्वतंत्र श्लोक बानगी के तौर पर—
पपात पूर्वां जहतो विजिह्मतां वृषोपभुक्तांतिकसस्यसम्पद:।
रथाङ्गसीमंतितसांद्रकर्दमान्प्रसक्तसंपातपृथक्कृतांपथ:॥4:18॥
[बरसात में जगह-जगह जल भर जाने से टेढ़े-मेढ़े और अदृश्य हुए रास्ते शरद ऋतु आने पर अब सीधे हो गए हैं. उन पर चलनेवाले रथों में नधे बैलों द्वारा दोनों ओर चरी गई खड़ी फ़सलों से, इन रथों के आने-जाने से उमड़े कीचड़ से, और बहुतेरे लोगों के बराबर चलते रहने से, वे साफ़ दिखाई पड़ने लगे हैं.]
पाँचवाँ सर्ग यक्ष के साथ अर्जुन के यात्रा-प्रसंग से गिरिराज हिमालय के पर्वतीय प्रदेश के विशद, अलंकारिक वर्णन की छटा से दीप्त है. भारवि हिमालय में ही मिथकीय मंदराचल को स्थापित करते हैं (31वाँ श्लोक) जिससे आगे बढ़ने पर कैलाश का दर्शन होता है (35-44 श्लोक). वहाँ से अर्जुन का गंतव्य इंद्रनील दिखने लगता है. इस सर्ग के अंतिम से पहलेवाले छ: श्लोक (45-50) इंद्रनील की विशिष्ट छटा के संक्षिप्त वर्णन को समर्पित हैं, जब कि अर्जुन की तप-स्थली के रूप में इसका विशद वर्णन छठे सर्ग में हुआ है. अर्जुन को वहाँ तक पहुँचाकर यक्ष अपने स्थान को लौट जाता है.

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

हिमालय के वर्णन में कर्णप्रिय ध्वन्यात्मकता वाले शब्द-चयन से जुड़ी छंद-योजना अद्‌भुत् प्रभाव पैदा करती है, पर प्रकृति के यथार्थ से दूर इसका कथ्य कल्पना और मिथकों का सहारा अधिक लेता है. कुछ अपवाद अवश्य हैं–

पृथुकदम्बकदम्बकराजितं ग्रथितमालतमालवनाकुलम्।
लघुतुषारतुषाररजलश्च्युतं धृतसदानसदाननदन्तिनम्॥5:9॥

[समूह में खड़े विशाल कदम्ब वृक्षों पर बहुतायत में खिले कदम्ब पुष्प सुशोभित हैं. दूसरी ओर घने तमाल-वन हैं, जिनमें पास-पास उगे तमाल वृक्ष (दूर से) पंक्तिबद्ध-जैसे लगते हैं.[4] और इनमें डोलते हैं सुंदर मुखवाले गजराज जिनके कपोलों से गिरनेवाला मद-जल निरंतर छोटे-छोटे हिमकणों की वर्षा-सा करता रहता है.]

इसी सर्ग में वह प्रसिद्ध श्लोक भी है जिसमें कमल-पराग के वायुचक्र के सहारे उड़कर आकाश में सुनहले छत्र-जैसा तन जाने के अनोखे बिंब ने भारवि को 'छत्र-भारवि' की संज्ञा दे दी थी:

उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मा-
दुद्‌धूत: सरसिजसम्भव: पराग:।
वात्यार्भिवियति विवर्तित: समन्तादा-
धत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम्॥5:39॥

[स्थल-कमलिनी का वन. उसमें फूले हुए कमल. वायु-चक्र के कारण चारों ओर फूलों से उड़ते पराग-कण. ऊपर आकाश में पहुंचकर वे मंडलाकार फैल जाते हैं. लगता है जैसे सुवर्णमय छत्र तन गया हो.]

छठे सर्ग का वर्ण्य विषय है अर्जुन की आँखों से देखी इंद्रनील की अप्रतिम शोभा, वहाँ पहुंचकर उसके द्वारा तप का प्रारम्भ, जिससे प्रभावित प्रकृति के विभिन्न उपादानों का तप में सहयोग, और उसके कारण चिंतित वहाँ तैनात वनदेवों द्वारा अमरावती पहहुँचकर इंद्र को सूचित करना, जिसके बाद इंद्र द्वारा देवांगनाओं को उनके सहचर गंधर्वों के साथ वहाँ जाकर अपने हाव-भाव के कामास्त्र से अर्जुन की तपस्या में विघ्न डालने का आदेश देना, ताकि उसकी निष्ठा की परीक्षा हो सके.

प्रकृति के भौगोलिक यथार्थ की सीमा का अतिक्रमणकर भारवि इंद्रकील में पर्वतीय सौंदर्य के सारे घटक एकसाथ एकत्र कर देते हैं. कैलाश के पास होने से उसके शिखर पर चढ़ते समय त्रिपथगा गंगा का मनोहर दृश्य दिखाई पड़ता है. गंगा की लहरों के संपर्क से शीतल हुई वायु मित्र की भाँति अर्जुन का आलिंगन करती है. उसकी थपकियाँ खाकर वृक्ष अपनी टेढ़ी-मेढ़ी शाखाओं के अग्रभाग से जैसे अर्जुन के स्वागत में पुष्प-वर्षा कर रहे हों. भौंरे ऐसे गूँज रहे हैं जैसे अर्जुन की जयजयकार कर रहे हों. शिलाओं से टकराकर चूर-चूर होती और नीचे गिरती जल-राशि की कल-कल ध्वनि हंसों और सारसों के कूजने के स्वर से मिलकर जैसे मंगल-सूचक वाद्य बजा रही हो. अर्जुन ने देखा कि नदी का उद्दाम वेग देवदारु के ऊँचे, विशाल वृक्षों को तो उखाड़ देता है किंतु बेंत की लचीली शाखाएँ अपनी विनम्रता के कारण उसे बचा लेती हैं—जैसे कि जीवन में होता है. जल के नीचे पड़ी मणि-राशि अपनी आभा से नदी की चंचल तरंगों को अपने ही रंग में रँग रही है, जैसे मनुष्य के क्रोधादि मनो-विकार टेढ़ी भौंहों आदि की बाह्य चेष्टाओं से स्वत: सूचित हो जाते हैं. पत्थरों से टकराने से उठनेवाला श्वेत फेन गंगा का निर्मल हास्य-जैसा लगता है....

सातवें सर्ग में देवांगनाएँ (अप्सराएँ) तथा उनके सहचर गंधर्व पूरे उल्लास-विलास के साथ आकाश मार्ग से विशेष प्रकार के हाथियों और रथों पर सवार देव गंगा (आकाश गंगा) के किनारे-किनारे अमरावती से इंद्रकील तक की यात्रा करते हैं. इंद्रकील के पास नीचे उतरकर वे पृथ्वी-गंगा के रम्य तट पर अपनी माया से गंधर्व-नगरी-जैसा दिव्य शिविर बना लेते हैं. कल्पना की उड़ान से किए गए कुछ सूक्ष्म वर्णनों को छोड दें तो पूरा सर्ग आज के पाठक को चित्र-वैचित्र्य से खचित एक वायवीय वितान भर लगेगा.

आठवाँ सर्ग. अप्सराएँ अपने शिविरों से वन-विहार के लिए निकलती हैं. यहाँ से शृंगार रस का रंग चढ़ना शुरू होता है, जो इसी सर्ग में वर्णित जल-क्रीड़ा में गाढ़ा होता है और नवें सर्ग में मद्य-पान के साथ सम्पन्न काम-केलि में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है. वन-विहार के समय कौतुक-पूर्वक पुष्प और नव-पल्लव एकत्र करती देवांगनाओं के वर्णन में प्राकृतिक और दैहिक सौंदर्य घुल-मिलकर मांसलता का एक विलक्षण पाठ रचते हैं. लेकिन गंधर्वों के साथ नदी में जल-क्रीड़ा करते समय प्रकृति लगभग खो जाती है, मांसल सौंदर्य की प्रतिमूर्ति मानी जानेवाली चिरयौवना देवांगनाएँ भाव-विभोर होकर अपने वस्त्रों और अंगों की स्थिति भूल जाती हैं, और पूरे पटल पर मुक्त किंतु तरल किस्म की यौनिकता की बघार लिए स्वच्छंद विलास का आलम छा जाता है. मूल कथा से कोई सरोकार न होने से उन्मुक्त दैहिकता का यह आख्यान महाकाव्य की आंतरिक अन्विति से स्वतंत्र अपने-आप में एक लक्ष्य बन गया लगता है. लेकिन कहीं-कहीं बेहद मौलिक बिंब-विधान से चमत्कृत करनेवाला अनूठा उक्ति-वैचित्र्य ज़रूर मिलेगा—

असंशयं न्यस्तमुपांतरक्ततां यदेव रोद्‌धुं रमणीभिरञ्जनम्।
हृतेऽपि तस्मिन् सलिलेन शुक्लतां निरास रागो नयनेषु न श्रियम्॥8:38॥

[रमणियाँ आँखों में जो (काला) अंजन लगाती हैं, वह कानों की लालिमा का विस्तार आँखों की ओर रोकने के लिए होगा. इसमें कोई संशय नहीं रह गया जब जल-क्रीड़ा के दौरान पानी ने आँखों का अंजन तो धो दिया लेकिन उनका सौंदर्य नहीं छीन सका, क्योंकि वे सफ़ेद पड़कर सूनी होने के बजाए (देर तक जल में रहने से) लालिमा से रंजित होकर वैसे ही सुशोभित बनी रहीं (मानो कानों की लालिमा आँखों तक फैल गई).]

नौवाँ सर्ग. जल-क्रीड़ा में दिन ढल गया. देवांगनाओं के नदी से निकलकर वस्त्राभूषण से सुसज्जित होते-होते सूरज लाल होकर पश्चिम दिशा में धरती पर लोटने लगा, जैसे किरणों की अँजुरी से कमल-पुष्पों का पराग पी-पीकर उन्मत्त हो गया हो. यह पूर्वाभास है देवांगनाओं द्वारा मद्यपान का और उसके प्रभाव से उन्मत्त रति-क्रीडा का, जो रात के अवसान तक चलती है. इस सर्ग में कुल 78 छंद

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

हैं, जिनमें से बहत्तरवें छंद में भारवि स्वयं लिखते हैं—अत्यधिक धृष्टता से रमणियों ने रति-प्रसंग में मर्यादा का उल्लंघन कर दिया क्योंकि निर्दयता से उनके केशपाश अस्त-व्यस्त हो गए और मालाएँ मसल उठीं. भारवि को एहसास तो रहा होगा कि उन्होंने भी कई छंदों में सहृदय साहित्य की मर्यादा का उल्लंघन किया है. जीवन को समग्रता में लेने और उसके हर पहलू में सिद्धहस्ता दिखाने की होड़ संस्कृत कवियों में अवश्य रही है. काम को चार पुरुषार्थों में से एक मानकर उसके प्रति सहज, स्वस्थ, उत्सवात्मक दृष्टिकोण आद्यंत उपनिविष्ट है, लेकिन कहीं-कहीं उसके साग्रह होने से एकांतिकता तथा परिप्रेक्ष्य-विहीनता का एहसास होता है. इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि कहीं भी कुरुचिपूर्ण, जुगुप्सित, रुग्ण या विकृत मानसिकता या व्यवहार की झलक नहीं मिलती. और कोई भी आख्यान महज़ उत्तेजना के लिए नहीं है, उसमें सुष्ठु पदावली, रस, अलंकार या उक्ति-वैचित्र्य के सहारे सौंदर्य-सृष्टि का प्रयास अवश्य हुआ है. मात्र इसी पहलू में डूब जाने के आधार पर हिंदी के रीतिकाल को यदि ह्रासोन्मुख कहा जाता है, तो कोई अनुचित नहीं. दसवाँ सर्ग अप्सराओं द्वारा अर्जुन का ध्यान खींचकर उसे तपस्या से च्युत करने के अभियान और उसकी असफलता का है. अप्सराओं की आज्ञा से जैसे ही गंधर्वों ने वीणा और मृदंग बजाना शुरू किया, छहों ऋतुओं का उद्दीपन एक साथ घटित होने लगा. आकाश में जल से भरे बादल छा गए, उनके गर्जन से दिशाएँ गूँज उठीं और बिजली चमकने लगी. अर्जुन के आश्रम में मालती की कलियाँ खिल उठीं, अर्जुन (वृक्ष) के फूलों से वायु सुगंधित हो चली. मंद समीर से हिलती कमलिनी के फूलों पर पंक्तिबद्ध बैठे भौंरे नायिका के मुख पर हिलती लटों जैसे दिखने लगे.....प्राणियों में काम-विकार उत्पन्न हुआ और वे रति-क्रीड़ा के लिए व्याकुल हो उठे. लेकिन जितेंद्रिय अर्जुन के सामने सब कुछ निष्फल. उल्टे गंन्धर्वों के साज पर नृत्य कर रही देवांगनाएँ ही अर्जुन के अंग-प्रत्यंग पर मोहित हो गईं. काम-पीड़िता होकर वे स्वाभाविक लज्जा छोड़, नेत्रों के कटाक्ष, दीनतापूर्ण याचना और आँसू-भरी आँखों से प्रणय निवेदन करने लगीं. जब उसका भी कोई असर नहीं हुआ तो अपने गंधर्व सहचरों के साथ वे अमरावती वापस लौट गईं.[1,2,3,4]

ग्यारहवें सर्ग में वयोवृद्ध मुनि के वेष में इंद्र के आगमन और उनके द्वारा तपस्या के सांसारिक लक्ष्य की निस्सारता का निदर्शन होता है जिसके प्रत्युत्तर में अर्जुन लौकिक जीवन के मूल्यों, प्राथमिकताओं का अपना आख्यान रचता है. जीवन-दर्शन का मूल द्वंद्व जिसमें आध्यात्मिक एवं इहलौकिक जीवन आमने-सामने हैं. और विजय होती है अध्यात्म की शाब्दिक वायवीयता के ऊपर इहलौकिक जीवन के ठोस, अकाट्य यथार्थ की.

इंद्र द्वारा परमार्थ का उपदेश भाषा, भाव, छंद सभी में गीता की याद दिलाता है और उसे पढ़ते हुए अंतस में लगातार कृष्ण के शब्द बजते रहते हैं:

शरदम्बुधरच्छायागत्वर्यो यौवनश्रिय:।
आपातरम्या विषया: पर्यन्तपरिपातिन:॥11:12॥
[यौवन-लक्ष्मी शरद ऋतु के बादलों की छाया के समान चंचल है. सांसारिक विषय तात्कालिक सुख तो देते हैं किंतु उनका अंत बड़ा दुखदायी होता है.]
अन्तक: पर्यवस्थाता जन्मिन: सन्ततापद:।
इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावुत्तिष्ठते जन:॥13॥
[इस संसार में जन्म लेनेवालों के लिए निरंतर दु:ख है और मृत्यु तो अनिवार्य है ही. इसलिए यह त्याज्य है, ऐसा समझकर योग्य लोग जन्म लेने के बाद मुक्ति के लिए ही प्रयत्न करते हैं.]
य: करोति वधोदर्का नि:श्रेयसकरी: क्रिया।
ग्लानिदोषच्छिद: स्वच्छा: स मूढ: पङ्कयत्यप:॥19॥
[जो मनुष्य तपस्या और दान आदि का आश्रय दूसरों की हिंसा के लिए लेता है, वह मूर्ख है, क्योंकि ये तो जीवन के लिए एकमात्र वरेण्य मुक्ति-फल के दायक हैं. यह ऐसे ही है जैसे रास्ते की थकावट और प्यास दूर करनेवाले निर्मल जल को मूर्ख लोग कीचड़ से मलिन कर देते हैं.]
मूलं दोषस्य हिंसादेरर्थकामौ स्म मा पुष:।
तौ हि तत्वावबोधस्य दुरुच्छेदावुपल्लवौ॥20॥
[काम और अर्थ ही हिंसा, चोरी, झूठ आदि तमाम दुर्गुणों के मूल कारण हैं. तत्वज्ञान के मार्ग में ये विकट बाधाएँ हैं. इसलिए इन्हें पुष्ट मत करो.]
अभिद्रोहेण भूतानामर्जयन् गत्वरी श्रिय:।
उदन्वानिव सिंधूनामापदामेति पात्रताम् ॥21॥
[प्राणियों की हत्या करके चंचल लक्ष्मी (धन, सत्ता आदि) बटोरनेवाला मनुष्य विपत्तियों का उसी तरह आश्रय बनता है, जिस तरह समुद्र नदियों का.]
या गम्या: सत्सहायानां यासु खेदो भयं यत:।
तासां किं यत्र दु:खाय विपदामिव संपदाम्॥22॥
[जो सम्पत्ति केवल साधन-सम्पन्न लोगों को प्राप्य है, जिसकी रक्षा के लिए नाना कष्ट उठाने पड़ते हैं, जिसके रहने से तरह-तरह के भय घेरे रहते हैं, वह तो विपत्ति के समान है, जो दु:ख के अलावा और कुछ नहीं देती.]
नान्तरज्ञा: श्रियो जातु प्रियैरासां न भूयते।
आसक्तास्तास्वमी मूढा वामशीला हि जन्तव:॥24॥

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

[लक्ष्मी किसी के साथ भेदभाव नहीं करती. इसका कोई प्रिय नहीं है. वे लोग मूर्ख और उल्टी बुद्धिवाले हैं जो इसके प्रति एकतरफ़ा आसक्ति रखते हैं, क्योंकि यह तो किसी से अनुरक्त होती नहीं (किसी को भी छोड़कर कहीं भी जा सकती है).]

जीयन्तां दुर्जया देहे रिपवश्चक्षुरादय:।
जितेषु ननु लोकोऽयं तेषु कृत्स्नस्वया जित:॥32॥

मनुष्य के लिए अपनी ही नेत्रादि इंद्रियों को वश में करना अतीव कठिन है. वही उसके असली शत्रु हैं. यदि उनको जीत लिया तो संसार को जीत लोगे.]

श्वस्त्वया सुखसंवित्ति: स्मरणीयाधुनातनी।
इति स्वप्नोपमान् मत्वा कामान मा गास्तदङ्गताम्॥34॥
श्रद्धेया विप्रलब्धार: प्रिया विप्रियकारिण:।
सुदुस्त्याजास्त्यजन्तोऽपि कामा: कष्टा हि शत्रव:॥35॥

[तुम इस समय जिस सुख का अनुभव कर रहे हो, वह कल मात्र स्मृति में रह जायेगा, जैसे स्वप्न का सुख सिर्फ़ स्मृति में रह जाता है; उसका अनुभव नहीं कर पाओगे. इसलिए इन विषय-सुखों को स्वप्नवत् मानकर इनके वशीभूत मत बनो. ये कामादि विषय-सुख श्रद्धा या विश्वास की दृष्टि से देखे जाने पर भी विश्वासघातक या वंचक साबित होते हैं. इनसे प्रेम करने पर भी ये दु:ख ही देते हैं. इंद्रियों के शिथिल होने पर तो ये छोड़कर चले ही जाते हैं. लेकिन यदि मनुष्य इन्हें स्वयं छोड़ना चाहे तो ये छोड़कर नहीं देते. इस तरह ये अत्यधिक कष्टदायी शत्रु हैं.]

अर्जुन इसके प्रत्युत्तर में अपनी दयनीय स्थिति और एक भाई व पति के रूप में अपने उत्तरदायित्व, पांडवों और द्रौपदी की अवदशा, दुर्योधन और दु:शासन द्वारा किए गए अत्याचार और अपमान का ख़ाका खींचता है. बताता है कि वह कैसे वेदव्यास के सुझाव पर, भ्राता युधिष्ठिर की आज्ञा से शस्त्रास्त्र की प्राप्ति हेतु देवराज इंद्र को प्रसन्न करने के लिए तपस्या का यह व्रत कर रहा है. दुर्योधन दुष्ट है और दुष्टों के साथ मित्रता करना किसी भी समय गिर जानेवाले नदी के कगार की छाया में बैठने-जैसा है. उस-जैसे शत्रु से दाँव-पेंच में पराजित होने के कारण वह और उसके भाई स्वाभिमान त्यागकर पशुओं के समान जीविका-निर्वाह कर रहे हैं. नम्र, दुर्बल, मान और गौरव से हीन तृण-सरीखा जीवन जी रहे हैं. इस अवस्था में वे सहयोगियों-मित्रों की कौन कहे, आपस में ही लज्जित महसूस करते हैं. जीवन उसी मनुष्य का सार्थक है जिसका नाम योग्य पुरुषों में गिना जाए, जो अपने वंशजों की प्रतिष्ठा बढ़ाए, जिससे वसुंधरा सार्थक हो, जो अपनी निष्कलंकता से चंद्रमंडल को लज्जित करे. अर्जुन ने आगे कहा कि वह सुख और धन की लिप्सा से, या विनाश से डरकर ब्रह्मपद या मोक्ष की कामना से तप नहीं कर रहा है. उसका उद्देश्य सिर्फ़ इतना है कि शत्रुओं के छल से द्रौपदी के अपमान आदि के अपयश का जो कीचड़ लगा है, उसे शत्रु-वर्ग की विधवाओं के वैधव्य-संताप से निकले आँसुओं से धो डाले. शत्रुओं के संहार में विजयश्री प्राप्तकर वंश-परंपरा से मिली राज्यलक्ष्मी का उद्धार किए बिना यदि उसे मोक्ष भी मिल जाए तो उसको बाधक समझेगा. मनुष्य जब तक शत्रुओं द्वारा विलुप्त अपने यश को वाणों की शक्ति से पुन: न प्राप्त कर ले, उसका जीवन मृत के समान और तृण से भी गया-बीता है. जिस मनुष्य का क्रोध शत्रु को निर्मूल किए बिना ही शांत हो जाए उसे पुरुष कैसे कहा जा सकता है? पुरुष जाति में पैदा हो जाने भर से कुछ नहीं होता, आख़िर पशुओं में भी तो पुरुष जाति होती है; सच्चा पुरुष वह है जिसकी गुणग्राहकों द्वारा प्रशंसा हो और गिने-चुने आदर्श व्यक्तियों में जिसकी गणना की जाए. अर्जुन ने बताया कि राजा युधिष्ठिर प्रतिज्ञा के अनुसार शत्रुओं का बदला चुकाने के लिए उसी का स्मरण करते हैं, जैसे प्यासा व्यक्ति जल की अँजुरी का ही स्मरण करता है. इसलिए गृहस्थाश्रम के बीच में ही उसको (अर्जुन को) इस वानप्रस्थ-वृत्ति का उपदेश धर्मशास्त्रों के विरुद्ध है, आश्रम-व्यवस्था का व्यतिक्रम है. अत: वह या तो इंद्र की सम्यक् आराधना से अपने अपयश-पंक को धो डालेगा, नहीं तो इसी पर्वत में विलीन हो जाएगा, जैसे वायु से छिन्न-भिन्न होकर बादल विलीन हो जाते हैं.

अर्जुन के हर शब्द से एक क्षत्रिय का उत्कट रजोगुण टपकता है जो अध्यात्म के सतोगुण को फीका कर देता है. सर्ग के अंत में अर्जुन के तर्क से संतुष्ट देवराज इंद्र अपने स्वरूप में प्रकट होकर उसके लक्ष्य के अनुरूप शिव की आराधना का उपदेश देते हैं.

भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि और इहलौकिक जीवन के यथार्थ के इस शास्वत द्वंद्व को इसकी पूरी विषमता में खड़ा करने और फिर यथार्थ की व्याप्ति के सामने नतमस्तक होनेवाली भारवि की जो दृष्टि है, उसमें निहित आधुनिक भाव-बोध पर कभी किसी कोने में चर्चा नहीं हुई.

भारवि का चित्रकाव्य

किरातार्जुनीयम् के अंतिम पाँच सर्ग (14-18) अपनी गण-सेना के साथ किरातवेशधारी शिव और अर्जुन के बीच युद्ध को समर्पित हैं. ध्यातव्य है कि महाभारत में शिव किरात वेश में पार्वती के साथ आते हैं और अर्जुन से अकेले लड़ते हैं जब कि किरातार्जुनीयम् में (संभवत: युद्ध-वर्णन के विस्तार और अर्जुन के युद्ध-कौशल के लिए अवकाश के उद्देश्य से) शिव को अपनी गण-सेना के साथ लड़ते दिखाया गया है और शुरू के दौर में अर्जुन वाण-वर्षा से इस सेना को तितर-बितर कर देता है. 15वें सर्ग में , जिसमें युद्ध का यह चरण आता है, भारवि ने चित्रकाव्य (अलंकारिक छंद) का प्रयोगकर महाकाव्य के दायरे के भीतर एक नई परम्परा का सूत्रपात किया है. अर्थ-प्रवाह को अक्षुण्ण रखते हुए भाषा के स्तर पर यह एक कठिन काम है. बानगी के तौर पर चित्रकाव्य के चार अपेक्षाकृत सरल उदाहरण:[2,3,4]

एकाक्षर छंद—

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

नुन्नोऽनुन्नो ननुन्ननेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्॥15:14॥
अन्वय एवं शब्दार्थ:
हे नाननना (अनेक मुखोंवाले) ऊननुन्न: (नीच पुरुषों से पराजित) ना न (मनुष्य नहीं है) नुन्नोन: ना अना (नीच पुरुषों को पराजित करनेवाला मनुष्य नहीं है). ननुन्ननेन: (जिसका स्वामी पराजित न हुआ हो) नुन्न: (पराजित) अनुन्न: (अपराजित) नुन्ननुन्ननुत् =नुन्न+नुन्न+नुत् (अति पीड़ित को भी पीड़ा पहुँचानेवाला) ना अनेना: न (मनुष्य निर्दोष नहीं).
[(अर्जुन से हारकर भागती हुई गण-सेना को संबोधित करते शिवपुत्र कार्तिकेय–) हे अनेक मुखोंवाले गण लोग ! जो नीच पुरुषों से पराजित हो जाता है, वह मनुष्य नहीं है, तथा जो नीच पुरुषों को पराजित करता है, वह भी मनुष्य नहीं है. युद्ध में जिसका स्वामी अभी पराजित नहीं हुआ है, वह शिकस्त पाने के बावजूद पराजित नहीं कहा जाता. अति पीड़ित को पीड़ा पहुँचानेवाला मनुष्य निर्दोष नहीं (अपितु नीच) है.]
इस सर्ग के बाईसवें और तईसवें छंदों की शब्द-योजना ऐसी है कि बाईसवें के अक्षर-प्रत्यक्षर को अंत से शुरू की ओर पढ़ने पर तेईसवाँ छंद बन जाता है. और ख़ूबी यह कि दोनों के अलग-अलग और प्रासंगिक अर्थ हैं और किसी में छंद की मात्रा भंग नहीं होती:
निशितासिरतोऽभीको न्येजतेऽमरणा रुचा।
सारतो न विरोधी न: स्वाभासो भरवानुत॥15:22॥
[(कार्तिकेय शिव के गणों से–) हे अमर प्रमथ गण ! हमारा विरोधी (अर्जुन) तीक्ष्ण खड्गधारी है, निर्भय है, तेजस्वी है और सुंदर आकृतिवाला है. युद्ध का भार उठाने लायक सहिष्णु है और बलवान शत्रु से भी कंपित नहीं होता.]
तनुवारभसो भास्वानधीरोऽविनतोरसा।
चारुणा रमते जन्ये कोऽभीतो रसिताशिनि॥15:23॥
[कवच से सुशोभित, तेजस्वी, मनोहर एवं उन्नत वक्षस्थलवाले फिर भी अधीर इस वीर के समान दूसरा कौन है जो अपने तुमुल नाद से ही विश्व के जंतुओं के प्राण निकालनेवाले इस अति भयंकर युद्ध में निर्भीक होकर खेलता रहे.]
सर्वतोभद्र छंद–
देवकानिनि कावादे
वाहिकास्वस्वकाहि वा।
काकारेभभरे काका
निस्वभव्यव्यभस्वनि॥15:25॥
इसकी विशेषता है कि (1) चारों पंक्तियों के हर अक्षर को ऊपर से नीचे पढ़ने पर भी वही चारों पंक्तियाँ बन जाती हैं, और (2) यदि क्रम उलट दिया जाए, यानी चौथी पंक्ति को पहली, तीसरी को दूसरी, दूसरी को तीसरी और पहली को चौथी लिखकर पढ़ा जाए तो वही छंद बन जाता है. इस तरह लम्बवत ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर पढ़ने पर भी छंद बदलता नहीं. इसीलिए इसे सर्वतोभद्र (सभी तरफ़ से ठीक) कहा गया है.
(1)

दे	वा	का	नि	नि	का	वा	दे
वा	हि	का	स्व	स्व	का	हि	वा
का	का	रे	भ	भ	रे	का	का

नि स्व भ व्य व्य भ स्व नि
(2)

नि	स्व	भ	व्य	व्य	भ	स्व	नि
का	का	रे	भ	भ	रे	का	का
वा	हि	का	स्व	स्व	का	हि	वा

दे व का नि नि का वा दे
[हे युद्धकामी पुरुष ! यह युद्ध का मैदान है जो देवताओं तक को उत्प्रेरित कर देता है. यहां युद्ध शब्दों का नहीं, प्राणों का है, क्योंकि लड़ते समय लोग प्राणों को दाँव पर लगाते हैं, और अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए. यह मैदान मदमत्त हाथियों के झुंडों से भरा रहता है और कौवों को निमंत्रण देता है. यहाँ उन्हें जो युद्ध के लिए उत्सुक हैं और उन्हें भी जो नहीं हैं, लड़ना ही पड़ता है.]
महायमक छंद–
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जतीशमार्गणा:।
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा:॥15:52॥
इस छंद में पहला चरण ही चारों चरणों में चार बार आवृत्त हुआ है लेकिन अर्थ अलग-अलग हैं, जो यमक अलंकार का लक्षण है. इसीलिए महायमक संज्ञा.
[पृथ्वीपति अर्जुन के बाण विस्तार को प्राप्त होने लगे जब कि शिव जी के बाण भंग होने लगे. राक्षसों के हंता प्रमथ गण विस्मित होने लगे तथा शिव का ध्यान करनेवाले देवता एवं ऋषिगण (इसे देखने के लिए) पक्षियों के मार्गवाले आकाश-मंडल में एकत्र होने लगे.]

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

कहना न होगा कि यह चित्रकाव्य संस्कृत भाषा की अपार शब्द-संपदा और कवि के उस पर पूर्ण अधिकार के मणिकांचन संयोग से ही संभव हुआ है. लगता नहीं कि संसार की किसी भी अन्य भाषा में ऐसा चमत्कार हो सकता है. ठीक है कि इस भाषिक चमत्कार को सृजन के क्षेत्र में एक दोष मान लिया गया . लेकिन इस दोष की संभाव्यता जिस उत्कट प्रतिभा और सामर्थ्य की मांग करती है, उसके ऐतिहासिक महत्व को नकारा नहीं जा सकता. यह भी ठीक हुआ कि काव्य के क्षेत्र में किया गया यह विलक्षण प्रयोग लुप्त हो गया, किंतु इतना जोड़ना पड़ेगा कि आज कोई चाहे भी तो उसके लिए यह संभव नहीं होगा.

परिणाम

जीवनवृत्त-भारवि के जीवन के सन्दर्भ में उनकी एक मात्र रचना 'किरातार्जुनीयम् में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। दक्षिण भारत में ऐहोड़ नामक स्थान पर (आन्ध्रप्रदेश में) एक शिलालेख मिलता है। जिसमें भारवि का नामोल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले थे। समीक्षकों का मानना है कि भारवि चालुक्यवंशी नरेश विष्णुवर्धन की सभा के पण्डित थे। उनकी रचना से उनके शैव होने का अनुमान लगाया जाता है, क्योंकि किरात स्वयं शिव ही थे। विद्वता के प्रामाणीकरण में प्राचीन समय में परीक्षा का आयोजन किया जाता था। राजशेखर ने लिखा है कि कालिदास, भर्तृमेण्ठ आदि की भान्ति भारवि की भी उज्जैन में परीक्षा ली गई थी और भारवि उसमें उत्तीर्ण हो गये थे। भारवि को उनके एक श्लोक के आधार पर आतपत्रभारवि' की संज्ञा दी गयी थी।

स्थितिकाल-महाकवि भारवि के काल को जानने का एक ही आधार हमारे पास है और वह है आन्ध्रप्रदेश के बीजापुर जिले के ऐहोड़ नामक ग्राम के जैन मन्दिर में मिला एक शिलालेख जिसमें लिखा है

"स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित कालिदास भारविकीर्तिः।" यह प्रशस्ति, पुलकेशी के आश्रित जैन कवि रविकीर्ति ने लिखी है। इस शिलालेख का काल 634 ई० है। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक भारवि प्रसिद्धि पा चुके थे। इसके अतिरिक्त गंगनरेश दुर्विनीत ने किरातार्जुनीयम् के अतीव कठिन पन्द्रहवें सर्ग पर टीका लिखी थी? दुर्विनीत का काल 481 ई० माना जाता है।अतः भारवि का इससे पूर्व होना अनिवार्य है। इसलिए उनका स्थितिकाल 450 ई० माना जाता है।

रचना-महाकवि भारवि की कीर्ति का आधार उनकी एकमात्र रचना "किरातार्जुनीयम्" महाकाव्य है। यह 18 सर्गों का महाकाव्य है, जो महाभारत के वनपर्व की कथा पर आधारित है। इस काव्य के आरम्भ में कहा गया है कि पाण्डव वनवास काल में जब द्वैतवन में रह रहे थे तो युधिष्ठिर ने अपने एक वनेचर मित्र को दुर्योधन की राज्य संचालन की विधि को जानने के लिए भेजा था। वह वनेचर आकर युधिष्ठिर को दुर्योधन की शासन व्यवस्था की जानकारी देता है। वनेचर की बातें सुनने के पश्चात् भीम और द्रौपदी युधिष्ठिर को वनवास और गुप्तवास की समय सीमाओं को तोड़कर युद्ध करने की प्रेरणा देते हैं परन्तु युधिष्ठिर इसके लिए सहमत नहीं होते हैं। इसी समय भगवान् वेदव्यास जी वहाँ आ पहुँचते हैं। वे उन्हें परामर्श देते हैं कि दुर्योधन को पराजित करने के लिए उन्हें दिव्यास्त्रों की आवश्यकता पड़ेगी। अतः अर्जुन को शिव भगवान् से पाशुपत पाने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर जाकर तप करना चाहिए। अर्जुन वहाँ जाकर घोर तप करते हैं। उनके तप में अप्सराएँ भी विघ्न न डाल सकीं। तब इन्द्र ने स्वयं आकर उन्हें शिवभक्ति का आदेश दिया। अर्जुन शिव के दर्शनों के लिए तप करते हैं। तप से प्रभावित होकर शिव किरात (शिकारी) का वेश बनाकर आते हैं। वे माया से उद्भावित एक शूकर को अर्जुन की ओर प्रेषित करते हैं। अर्जुन उस पर बाण चलाते हैं। उधर किरात वेशधारी शिव भी शूकर पर बाण छोड़ते हैं। शूकर मर जाता है।

अर्जुन का बाण शूकर को बींध कर धरती में चला जाता है। बचे हुए बाण के लिए किरात और अर्जुन में विवाद हो जाता है। वाग्युद्ध बाहुयुद्ध में बदल जाता है। अर्जुन के बल से प्रसन्न होकर शिव अपने स्वरूप को प्रकट करते हैं और अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान करते हैं। यहीं यह काव्य समाप्त हो जाता है। भारवि ने महाभारत की मूल कथा में कतिपय परिवर्तन करके इस काव्य की रचना की है। यह वीर रस प्रधान काव्य है तथा अलंकृत शैली का प्रतिनिधि काव्य है। इसकी गणना बृहत्त्रयी में की जाती है। इसके प्रत्येक सर्य का आरम्भ "श्री" शब्द से होता है। यथा- "श्रियः कुरुणामधिपस्य पालिनीम्"[3,4]

यह किरातार्जुनीयम् का पहला श्लोक है जो "श्री" शब्द से ही आरम्भ होता है। यह काव्य अर्थगौरव के लिए विख्यात है।

भारवेर्थगौरवम्✡□ कवि कालिदास उपमा प्रयोगों के वैचित्र्य के लिए जाने जाते हैं। उसी प्रकार भारवि अपने काव्य में प्रयुक्त अर्थगौरव के लिए जाने जाते हैं। अर्थ गौरव का अभिप्राय है नपेतुले अल्प शब्दों से विपुलार्थ प्रकाशन की कला या गागर में सागर भरने का सामर्थ्य । वस्तुत: महाकवि भारवि ने अपने महाकाव्य को ऐसी गम्भीरार्थक सूक्तियों से सम्भृत किया है जिसके कारण समीक्षक यह कहने के लिए बाध्य हुए कि "भारवेरर्थगौरवम्।" अर्थगौरव की दृष्टि से महाकवि भारवि के किरातार्जुनीय का प्रथमसर्ग अतीव महत्त्वपूर्ण है। इसमें वनेचर और द्रौपदी दोनों ही पात्रों के कथन अर्थगाम्भीर्य से सम्भृत हैं।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

वनेचर कथनों में अर्थगौरवः ✡ □–वनेचर युधिष्ठिर का परम मित्र है। वह दुर्योधन के राज्य की बहुत सी जानकारियाँ एकत्रित करके लाया है। बहुत सी सूचनाएँ ऐसी भी हैं जो युधिष्ठिर को अच्छी नहीं लग सकती हैं। इसलिए वनेचर कहता है कि जो मित्र सत्य न कहे वह कुत्सित मित्र होता है। यथा

-किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपम्। हितान्न यः संघृणुते स किं प्रभु :

कितनी गहरी बात कही है वनेचर ने अपने इस तथ्य की पुष्टि में वनेचर यह भी कहता है कि- "हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।" अर्थात् ऐसा कथन बड़ा दुर्लभ है जो हितकर भी हो और कर्णमधुर भी। विश्व भर के सेवकों को स्वामी भक्ति का सन्देश देते हुए वनेचर परिमित शब्दों में कहता है कि

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः । अर्थात् नौकरों को चाहिए कि वे गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले राजाओं को न ठगें। कितनी बड़ी बात हैं जो एक निष्ठावान् सेवक के माध्यम से कही गयी है।

द्रौपदी के कथन में अर्थगौरव:- ✡ □ इसी प्रकार द्रौपदी ने युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए जो है;वह अर्थगाम्भीर्य से सम्भृत है। द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि उग्रक्रोधी व्यक्ति के वश में सभी आसानी से हो जाते हैं। यथा

अवन्ध्य कोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्या स्वयमेव देहिनः।" द्रौपदी पराक्रमी पुरुषों के विषय में कहती है कि न्यायार्थ पराक्रम दिखाने वालों के लिए पराभव भी उत्सव तुल्य ही होता है। न्यायप्रिय लोगों के मनोबल को बढ़ाने वाली यह सूक्ति कितने गम्भीरार्थ की घोतक है। युधिष्ठिर को बड़े सटीक शब्दों में व्यंग्य करती हुई द्रौपदी कहती है कि

शमेन सिद्धि मुनयो न भूभृतः। अर्थात् शान्ति से साधु-सन्तों को सिद्धि प्राप्त होती है; राजाओं को नहीं। यह वाक्य प्रेरणा का जितना कार्य कर सकता है, उतना कार्य एक बड़ा वक्तव्य भी नहीं कर सकता है। इस प्रकार की अर्थगौरवपूर्ण अनेकों सूक्तियाँ भारवि ने अपने महाकाव्य में प्रयुक्त की हैं। यथा :

न महानिच्छति भूतिमन्यतः। (2-18)। महापुरुष दूसरों से अपने कल्याण की बात नहीं चाहते यानी वे अपना हित स्वयं करने में समर्थ होते हैं।

सहसाविदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। (2-30)। जल्दबाजी में कोई कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि अविवेक यानी शीघ्रता में किया गया कार्य विपत्तियों का कारण बन जाता है।

"न तितिक्षा सममस्तिसाधनम्। "अर्थात् सहनशक्ति (क्षमा) के समान अन्य कोई महान् गुण नहीं है।

नयहीनादपरज्यते जनः । (2-49))नीतिविहीन राजा से प्रजायें विरक्त हो जाती हैं यानि उसका साथ देना छोड़ देती हैं।

विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः। (2-52) उच्छृखलों की सम्पत्तियों का दुःखदायी अन्त होता है।

मुखरता अवसरे हि विराजते। (5-16)। अधिक बोलना किसी विशेष अवसर पर ही शोभा देता है।

सा लक्ष्मीरुपकुरूते ययापरेषाम्। (7-28) वास्तविक राजलक्ष्मी (सम्पत्ति) वही है जिसके द्वारा दूसरों का भला किया जाये।

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तूनि। (8-37)। गुण प्रेम में होते हैं वस्तु में नहीं।

.प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि। (9-70)। प्रेम सर्वत्र भय की आशंका से सम्भृत रहता है। .

न्यायाधारा हि साधवः (11-30)। सज्जन सदैव न्याय पर आधारित आचरण करते हैं।

निष्कर्ष

कितनी गहरी बात कही है वनेचर ने अपने इस तथ्य की पुष्टि में वनेचर यह भी कहता है कि- "हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।" अर्थात् ऐसा कथन बड़ा दुर्लभ है जो हितकर भी हो और कर्णमधुर भी। विश्व भर के सेवकों को स्वामी भक्ति का सन्देश देते हुए वनेचर परिमित शब्दों में कहता है कि

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 7.54| Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 6, Issue 2, February 2023 |

| DOI:10.15680/IJMRSET.2023.0602033 |

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः । अर्थात् नौकरों को चाहिए कि वे गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले राजाओं को न ठगें। कितनी बड़ी बात हैं जो एक निष्ठावान् सेवक के माध्यम से कही गयी है।

द्रौपदी के कथन में अर्थगौरव:- ✡ □ इसी प्रकार द्रौपदी ने युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए जो है;वह अर्थगाम्भीर्य से सम्भृत है। द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि उग्रक्रोधी व्यक्ति के वश में सभी आसानी से हो जाते हैं। यथा

अवन्ध्य कोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्या स्वयमेव देहिनः।" द्रौपदी पराक्रमी पुरुषों के विषय में कहती है कि न्यायार्थ पराक्रम दिखाने वालों के लिए पराभव भी उत्सव तुल्य ही होता है। न्यायप्रिय लोगों के मनोबल को बढ़ाने वाली यह सूक्ति कितने गम्भीरार्थ की घोतक है। युधिष्ठिर को बड़े सटीक शब्दों में व्यंग्य करती हुई द्रौपदी कहती है कि

शमेन सिद्धि मुनयो न भूभृतः। अर्थात् शान्ति से साधु-सन्तों को सिद्धि प्राप्त होती है; राजाओं को नहीं। यह वाक्य प्रेरणा का जितना कार्य कर सकता है, उतना कार्य एक बड़ा वक्तव्य भी नहीं कर सकता है। इस प्रकार की अर्थगौरवपूर्ण अनेकों सूक्तियाँ भारवि ने अपने महाकाव्य में प्रयुक्त की हैं। यथा :

न महानिच्छति भूतिमन्यतः। (2-18)। महापुरुष दूसरों से अपने कल्याण की बात नहीं चाहते यानी वे अपना हित स्वयं करने में समर्थ होते हैं।

सहसाविदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। (2-30)। जल्दबाजी में कोई कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि अविवेक यानी शीघ्रता में किया गया कार्य विपत्तियों का कारण बन जाता है।

"न तितिक्षा सममस्तिसाधनम्। "अर्थात् सहनशक्ति (क्षमा) के समान अन्य कोई महान् गुण नहीं है।

नयहीनादपरज्यते जनः । (2-49))नीतिविहीन राजा से प्रजायें विरक्त हो जाती हैं यानि उसका साथ देना छोड़ देती हैं।

विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः। (2-52) उच्छृखलों की सम्पत्तियों का दुःखदायी अन्त होता है।

मुखरता अवसरे हि विराजते। (5-16)। अधिक बोलना किसी विशेष अवसर पर ही शोभा देता है।

सा लक्ष्मीरुपकुरूते ययापरेषाम्। (7-28) वास्तविक राजलक्ष्मी (सम्पत्ति) वही है जिसके द्वारा दूसरों का भला किया जाये।

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तूनि। (8-37)। गुण प्रेम में होते हैं वस्तु में नहीं।

.प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि। (9-70)। प्रेम सर्वत्र भय की आशंका से सम्भृत रहता है। .

न्यायाधारा हि साधवः (11-30)। सज्जन सदैव न्याय पर आधारित आचरण करते हैं।[4]

संदर्भ

1. Original text with Sanskrit commentary: Bhāravi (1885). Nārāyaṇa Bālakṛishṇa Godabole; Kāśināth Pāṇḍurang Paraba, eds. The Kirâtârjunîya of Bhâravi: with the commentary (the Ghaṇṭâpatha) of Mallinâtha. Nirṇaya-Sâgara press.
2. Transliterated text Archived २०१०-११-१० at the Wayback Machine at GRETIL
3. Kairata Parva, translation of the part of the Vana Parva that contains the story.
4. The Hunter and the Hero: a very slightly abridged verse translation of the Kirātārjunīya into English by Romesh Chunder Dutt, in his Lays of Ancient India

Impact Factor
7.54

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH IN SCIENCE, ENGINEERING AND TECHNOLOGY

| Mobile No: +91-6381907438 | Whatsapp: +91-6381907438 | ijmrset@gmail.com |

www.ijmrset.com